7

सैयद बंधुओं की विज़ारत

फ़र्रुख़सियर को पदच्युत करके तथा रफ़ीउद्दरजात को गद्दी पर बैठाने के पश्चात सैयदों ने प्रमुख प्रशासनिक पदों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया। किंतु बादशाह को अमीरों तथा अन्य विरोधी तत्वों से दूर रखने के अभिप्राय से उन्होंने पद अपने अनुयायियों को प्रदान किए। वे यह निर्धारित करते थे कि बादशाह के साथ किस-किस व्यक्ति को मिलने दिया जाए। इस प्रकार दारोग़ा दीवाने-ख़ास, दारोग़ा-ए-गुसलख़ाना, नाज़िरे-हरम इत्यादि पदों पर सैयदों ने अपने अनुयायियों को नियुक्त किया। महल के ख़्वाजा-सरा एवं बादशाह के व्यक्तिगत सेवक (ख़्वासान) भी सैयदों द्वारा नियुक्त किए गए। सैयद हिम्मत ख़ाँ बारहा को बादशाह का अतालीक़ (संरक्षक) नियुक्त किया गया। कहा जाता था कि उसकी आज्ञा के बिना बादशाह को खाना तक नहीं दिया जाता था। बादशाह अपने अतालीक़ अथवा सैयद बंधुओं में से किसी एक की उपस्थिति में ही किसी अमीर से बात कर सकता था। जब कभी भी बादशाह जुम्मे की नमाज़ अथवा शिकार आदि के लिए बाहर निकलता था, बारहा सिपाहियों का एक दल उसे घेरे रहता था। इस तरह बादशाह की स्वतंत्रता बिल्कुल समाप्त हो गई थी।[1]

क्षय रोग के कारण रफ़ीउद्दरजात की 11 जून 1719 को मृत्यु हो गई। उसके पश्चात उसका बड़ा भाई रफ़ीउद्दौला गद्दी पर बैठा किंतु उसके शासनकाल में बादशाह की स्थिति यथावत बनी रही। 28 सितंबर 1719 को रफ़ीउद्दौला की भी क्षय रोग से मृत्यु हो गई। इसके पश्चात सैयदों ने बहादुरशाह के सबसे छोटे पुत्र जहाँशाह के लड़के मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाया। मुहम्मदशाह के गद्दी पर बैठने के साथ ही उसके ऊपर अपने नियंत्रण में सैयदों ने कुछ ढील दे दी। पुराने द्वाररक्षकों एवं व्यक्तिगत सेवकों को उनके पुराने पदों पर पुनः नियुक्त कर दिया गया, किंतु राज्य के सभी मामलों में बादशाह शक्तिहीन बना रहा और उसका अधिकार तथा प्रभाव नाममात्र का रहा।

फ़र्रुख़सियर के बहुत से कृपापात्र, जैसे मुहम्मद मुराद कश्मीरी, अमीनुद्दीन संभली, फ़ज़ीउद्दीन अहमद बेग तथा बादशाह के कुछ संबंधियों जैसे शाइस्ता ख़ाँ, सआदत ख़ाँ आदि की मंसब एवं संपत्ति छीन ली गई। किंतु अधिकांश अमीरों के पदों में हस्तक्षेप नहीं किया गया। किसी भी अमीर को मृत्युदंड नहीं दिया गया, यहाँ तक कि फ़र्रुख़-

Scanned by CamScanner

M. A. (MIH) 2nd SEMESTER

& Administrative Aspects: 1658-1739)

कृपापात्र ख़ाने-दौरान एवं मीर जुमला को भी उनकी मंसब से नहीं हटाया गया। अधिकांश सूबेदार एवं अधिकारी अपने-अपने प्रांतों में अपने पूर्व पदों पर कार्य करते रहे। इस प्रकार सैयद बंधु पुराने अमीरों को आश्वस्त करना चाहते थे और राज्य में सामान्य स्थिति [illegible] स्थापित करना चाहते थे। साथ ही उनके लिए यह भी आवश्यक था कि वह अपनी [illegible] को मज़बूत करें। इसके लिए दो कार्य अत्यंत आवश्यक थे-एक, विरोधियों को [illegible] का अवसर न देना अर्थात विरोधी षड्यंत्रों को नाकाम करना और राज्य के सभी [illegible] अपना अधिकार स्थापित करना। दूसरा कार्य था, अपने गुट को दृढ़ करना अर्थात [illegible] राजपूत राजाओं तथा पुराने अमीरों के साथ अपने मैत्री संबंध और अच्छे बनाना।

सैयदों ने उच्च पदों पर अपना एकाधिकार स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया। [illegible] अमीन ख़ाँ द्वितीय मीर बख़्शी के पद पर कार्य करता रहा और एक अन्य तूरानी, [illegible] ज़फ़र ख़ाँ को तृतीय बख़्शी नियुक्त किया गया। इनायतुल्ला ख़ाँ जिसकी नीतियों का [illegible] विरोध करते रहे थे, ख़ाने-सामा एवं कश्मीर के (अनुपस्थित) सूबेदार के पद पर कार्य करता रहा। सद्र का पद प्रारंभ में मुहम्मद अमीन ख़ाँ तथा बाद में मीर जुमला को प्रदान किया [illegible] केवल कुछ ही पदों पर बारहा अथवा सैयदों के कृपापात्र नियुक्त किए गए जिनमें [illegible] एवं इलाहाबाद की सूबेदारी तथा मुरादाबाद की फ़ौजदारी सम्मिलित थी।

फ़र्रुख़सियर को पदच्युत करने का तत्काल परिणाम यह हुआ कि सैयदों को कई विद्रोहों का सामना करना पड़ा। सर्वप्रथम विद्रोह का केंद्र आगरा था। आगरा के किले में तैमूरी [illegible] के कई शाहज़ादे बंदी थे। उनमें से एक शाहज़ादे नेकूसियर को, जो औरंगज़ेब के बेटे शाहज़ादा अकबर का बड़ा बेटा था और जो बाल्यकाल से किले में बंदी था, कुछ लोगों ने बादशाह घोषित कर दिया। नेकूसियर के मुख्य सहायक थे वहाँ का किलेदार और मित्रसेन नाम का एक नागर ब्राह्मण, जिसे राजा बीरबल की उपाधि तथा दीवान का पद प्रदान किया [illegible] पास-पड़ोस के बहुत से अफ़गान सिपाहियों ने रुपये के लालच से नेकूसियर का साथ देना प्रारंभ कर दिया। सैयदों को भय था कि उनके विरोधी नेकूसियर के नाम से आगरे के निकटवर्ती क्षेत्रों में विद्रोह प्रारंभ न कर दें। यद्यपि नेकूसियर को बादशाह घोषित करते समय निज़ामुलमुल्क आगरा के निकट था, उसने नेकूसियर का समर्थन नहीं किया। सैयदों को वास्तविक भय जयसिंह की ओर से था। फ़र्रुख़सियर के पतन के बाद कई अमीर [illegible] जाकर जयसिंह से मिल गए थे तथा बहुत से अमीरों ने गुप्त रूप से उसे समर्थन करने का वायदा किया था। उस समय जयसिंह आगरा से 80 कोस दूर टोडा तालाब पर डेरा डाले हुए था तथा दूसरे सहयोगियों के आने की प्रतीक्षा कर रहा था।[3] किंतु नेकूसियर के सहयोगी न तो प्रभावशाली अमीर थे, न वे युद्ध में दक्ष थे। वह आगरा शहर पर भी अपना कब्ज़ा नहीं [illegible] सके। इस विद्रोह को शीघ्रातिशीघ्र कुचलने के लिए अब्दुल्ला ख़ाँ फ़ौज लेकर आगरा पहुँच गया। [illegible] महीने के अवरोध के बाद आगरा के किले में रसद समाप्त हो गई। बहुत से अफ़गान भी भाग [illegible] निकले। 12 अगस्त 1719 को किलेदार ने हथियार डाल दिए। नेकूसियर को सम्मान सहित दिल्ली के [illegible] बंदीगृह में भेज दिया गया। मित्रसेन ने आत्महत्या [illegible]

सैयदों के विरुद्ध षड्यंत्रों का दूसरा केंद्र इलाहाबाद [illegible] फ़र्रुख़सियर का पुराना सहयोगी था तथा सैयदों के [illegible] सैयदों ने उसे दरबार से दूर रखा था। यद्यपि सैयद बंधु [illegible] थे, वह उसे इलाहाबाद से हटाने के लिए उत्सुक थे। [illegible] न केवल सैनिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली [illegible] जाने वाले शाही मार्ग पर स्थित था। बंगाल से [illegible] के शासनकाल के अंतिम दिनों से ही मुग़ल सरकार [illegible] सैयदों की आर्थिक स्थिति गंभीर थी। बंगाल के सूबेदार मुर्शिदकुली [illegible] ख़ज़ाना उस समय बनारस पहुँच गया था। उसे कुशलता से दिल्ली पहुँचाने [illegible] ख़ाँ ने अपने भानजे शाहअली ख़ाँ को एक फ़ौज के साथ इलाहाबाद [illegible] ख़ाँ ने छबेलाराम व उसके भतीजे गिरधर बहादुर को वहाँ [illegible] आने का निमंत्रण दिया तथा यह भी वायदा किया कि इलाहाबाद के [illegible] तथा अवध की सब फ़ौजदारियाँ प्रदान कर दी जाएँगी। किंतु वे [illegible] टालमटोल करते रहे। उसका मुख्य कारण शायद यह था कि उन्हें [illegible] जयसिंह, निज़ाम तथा मराठों से सहायता की आशा थी।[4]

आगरा की विजय के बाद भी सैयद छबेलाराम के साथ समझौता करने का प्रयास करते रहे। साथ ही उन्होंने हैदर कुली के नेतृत्व में एक फ़ौज भेजी, जिसने इलाहाबाद के किले का घेरा डाल दिया। कुछ काल बाद, छबेलाराम की मृत्यु हो गई, किंतु उसके भतीजे गिरधर बहादुर ने विद्रोह जारी रखा। हैदर कुली किले पर अधिकार प्राप्त करने में असफल रहा। अब्दुल्ला ख़ाँ ने स्वयं इलाहाबाद जाने का कई बार निश्चय किया, किंतु उसे स्थगित कर दिया। अंत में राजा रतनचंद की मध्यस्थता से 11 मई 1720 को गिरधर बहादुर ने इलाहाबाद का किला खाली कर दिया। पूर्व आश्वासनों के अनुसार उसे अवध की सूबेदारी तथा वहाँ की कई फ़ौजदारियाँ प्रदान की गईं तथा अन्य फ़ौजदारियों पर और वहाँ के दीवान के पद पर जिन्हें चाहे नियुक्त करने का अधिकार दे दिया गया। उस प्रांत की सनद [illegible] को पहले ही सौंप दी गई थी ताकि गिरधर बहादुर को सनद प्राप्ति के लिए दरबार में न जाना पड़े और किला शीघ्र खाली कर दे। इसके अलावा गिरधर बहादुर को फ़ौज ख़र्च के नाम पर तीस लाख रुपए भी दिए गए।[5]

ये दोनों विद्रोह इस बात के प्रतीक थे कि पुराने अमीर, स्थानीय हाकिम, ज़मींदार इत्यादि सभी सैयदों की सत्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। राजनैतिक परिस्थिति को देखते हुए सैयदों ने इन विद्रोहों के प्रति उदार नीति अपनाई, तथापि इन विद्रोहों को निपटाने में सैयदों को एक वर्ष से अधिक लग गया। इसका प्रभाव सैयदों की सैनिक प्रतिष्ठा पर पड़ना स्वाभाविक था। साथ ही यह सैयदों की राजनैतिक व सैनिक दुर्बलता के परिचायक थे। सैयद बंधुओं की राजपूत व मराठा नीति तथा पुराने अमीरों, विशेष रूप से निज़ामुलमुल्क व उसके गुट के अमीरों के साथ उनके संबंध इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हो गए।

Scanned by CamScanner

सैयद बंधु तथा राजपूत व मराठे

राजपूतों एवं मराठों के साथ अपने संबंध दृढ़ करने एवं हिंदू भावना को अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से सैयद बंधुओं ने कई कदम उठाए। फर्रुखसियर को पदच्युत करने के तीन बाद ही अजीतसिंह के मामलों से जज़िया पुनः हटा दिया गया।[6] अजीतसिंह की पुत्री को, जिसका विवाह फर्रुखसियर के साथ हुआ था, अपनी सारी धन संपत्ति के साथ अपने पिता के साथ जोधपुर जाने की आज्ञा दे दी गई। यही नहीं, उसे इस्लाम धर्म छोड़कर फिर से हिंदू हो जाने की अनुमति दे दी गई। ख़ाफ़ी ख़ाँ ने सैयदों की इस कार्यवाही को अनुचित कहा है। राजधानी के कट्टरपंथी मुस्लिम वर्ग ने इस पर बड़ी आपत्ति की तथा काज़ियों ने इस्लाम धर्म को छोड़ना 'अवैध' करार दिया। किंतु इस वर्ग की आपत्तियों के प्रति सैयदों ने कोई ध्यान नहीं दिया।[7] यही नहीं, अजीतसिंह को अजमेर तथा गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया, जिसका अपना महत्व था। अजमेर में ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह स्थित होने के कारण वह मुसलमानों का तीर्थस्थान था तथा राजनीतिक दृष्टि से राजपूत राज्यों पर नियंत्रण रखने के लिए महत्वपूर्ण था। अतः अजमेर की सूबेदारी किसी शाहज़ादे या ऊँचे पद के अमीर को ही दी जाती थी। अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी प्रदान करना उनकी प्रतिष्ठा का स्पष्ट प्रमाण था।

फर्रुखसियर के गद्दी से हटने तक सैयदों के मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध रहे थे। सैयदों के कारण ही सितंबर 1713 में फर्रुखसियर ने महाराणा को 7000/7000 की मनसब तथा आठ करोड़ दाम इनाम में प्रदान किए थे। इससे पूर्व किसी भी राजपूत राजा को सक्रिय रूप से शाही सेवा किए बिना इतना बड़ा पद एवं सम्मान प्राप्त नहीं हुआ था। अजीतसिंह के विरुद्ध अभियान के समय राणा ने हुसैन अली को सहायता प्रदान की थी। 1717 में सैयदों ने राणा को रामपुरा का क्षेत्र भी दे दिया था। किंतु फर्रुखसियर को हटाने के समय तक सैयदों के प्रति राणा का व्यवहार बदल चुका था। छबेलाराम को लिखे गए महाराणा के पत्रों से ज्ञात होता है कि महाराणा संग्रामसिंह सैयदों का विरोध कर रहा था और छबेलाराम, जयसिंह, निज़ामुल्मुल्क एवं मराठों से साँठ-गाँठ कर रहा था। सैयदों ने महाराणा को पत्र लिख कर सचेत किया कि वह जयसिंह का साथ देना बंद कर दे। किंतु सैयदों की इस चेतावनी का राणा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जयसिंह की सहायता के लिए राणा ने उसे धन दिया तथा पंचोली बिहारीदास के नेतृत्व में एक फ़ौज भेजने का निश्चय किया। यह कहना कठिन है कि सैयदों से राणा के असंतुष्ट होने का क्या कारण था। राणा का 1708 में जयसिंह के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना एक नई नीति का परिचायक था। आंबेर राज्य के साथ मेवाड़ की मैत्री की पुष्टि करना राणा के आंतरिक व बाह्य उद्देश्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण था। गोड़वाड़ इत्यादि सीमावर्ती परगनों के विषय में मेवाड़ व मारवाड़ का संघर्ष पुराना था। साथ ही अजीतसिंह की बढ़ती हुई शक्ति के विरुद्ध आंबेर के साथ गठबंधन राणा के लिए आवश्यक हो गया था। मेवाड़ व आंबेर दोनों राज्यों के नरेश महत्वाकांक्षी थे। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, संग्रामसिंह द्वितीय के शासनकाल

(1713) में मेवाड़ की शक्ति की सीमाएँ बढ़ीं। जयसिंह तथा अजीतसिंह का विद्रोह पूर्णतः ... सैयदों का अजीतसिंह के साथ मिलकर संबंध स्थापित करना दोनों राजाओं को ... लगा। इन दोनों राजाओं का विरोध सैयदों के लिए चिंता का विषय था। ... जयसिंह प्रारंभ से ही सैयदों का विरोधी रहा था। यह कहा जा चुका है कि जयसिंह ... के समय नेकूसियर का साथ देने के लिए वह आगरा से 80 मील दूर टोडा तालाब ... पहुँचे हुए था। उसने सैयदों के कई विरोधी अमीरों को भी संरक्षण प्रदान किया था। ... बुधसिंह जिसे सैयदों ने बूँदी की गद्दी से हटा दिया था, ... विद्रोह में छबेलाराम की सहायता की थी और बुधसिंह ने बहुत सी ... हथिया ली थी। इलाहाबाद के सूबेदार हैदर कुली ख़ाँ के साथ भी उसका युद्ध हुआ ...

जयसिंह को टोडा तालाब से आगे बढ़ने से रोकने के अभिप्राय से सैयद हुसैन अली ने ... बख़्शी को एक फ़ौज के साथ मरौठ नामक स्थान पर जाकर नाकेबंदी करने के लिए ... था। आगरा के क़िले पर विजय प्राप्त करने के पश्चात अब्दुल्ला ख़ाँ ने भी बादशाह ... अपने साथ अजमेर ले जाने व जयसिंह को कुचलने की योजना बनाई। इस परिस्थिति में अजीतसिंह की मध्यस्थता से जयसिंह ने सैयदों के साथ समझौता करना स्वीकार कर लिया। ... की फ़ौजदारी तथा समुचित धन प्रदान किया गया। यद्यपि जयसिंह सैयदों के प्रति ... नहीं था, सैयद बंधुओं ने अजीतसिंह के माध्यम से उसे अपनी ओर मिलाने का ... जारी रखा। सैयदों के कहने से अजीतसिंह ने कालाडेरा में जयसिंह से भेंट की तथा ... जोधपुर बुलाया। जोधपुर पहुँचने पर जयसिंह का अत्यधिक सत्कार किया गया। कुछ ... के पश्चात 1 मई 1720 को अजीतसिंह ने अपनी लड़की सूरजकुँवर का विवाह जयसिंह ... कर दिया।[9] उसी समय जयसिंह को सोरठ की फ़ौजदारी प्रदान की गई। अजीतसिंह को आशा ... कि धीरे-धीरे वह जयसिंह के सैयदों के प्रति वैमनस्य को मैत्री में परिणत कर देगा।

इस प्रकार सैयदों ने राजपूत राजाओं के साथ अपने संबंध दृढ़ करने का प्रयास किया। ... के विरोधियों ने इसे हिंदुओं के प्रति पक्षपातपूर्ण नीति कहा। ख़ाफ़ी ख़ाँ शिकायत करते हुए लिखता है कि "राजधानी से लेकर नर्मदा के किनारे तक के प्रदेश में काफ़िर अपने मंदिरों के पुनर्निर्माण में एवं गोवध रोकने में संलग्न थे।"[10] यदि राज्यसत्ता अधिक समय तक सैयदों के हाथों में रहती तो संभवतः इन नीतियों का अपेक्षित परिणाम होता। किंतु उस समय तक सैयदों की स्थिति दृढ़ नहीं हुई थी। सैयदों के विरुद्ध निज़ामुल्मुल्क का साथ देने के प्रस्ताव को जयसिंह ने ठुकरा दिया किंतु वह सैयदों के पक्ष में भी शामिल नहीं हुआ।

यद्यपि अजीतसिंह सैयदों का बड़ा कृपापात्र था तथा उसे अजमेर तथा गुजरात की दोनों महत्वपूर्ण सूबेदारियाँ प्रदान की गई थीं तथापि दिसंबर 1719 में जोधपुर पहुँचने के पश्चात अजीतसिंह ने सैयदों की राजनीतिक गतिविधियों में कोई विशेष भाग नहीं लिया। अब्दुल्ला ख़ाँ के उसके नाम लिखे हुए पत्रों में, जो 'बालमुकंदनामा' पुस्तक में प्राप्य है, आग्रह किया गया है कि अजीतसिंह स्वयं गुजरात की सूबेदारी सँभाले क्योंकि उसकी अनुपस्थिति के कारण वहाँ की परिस्थिति बिगड़ गई है और मराठों के उपद्रव से वहाँ के निवासियों की जान मुँह

Scanned by CamScanner

तक आ गई है और उनका दम निकालने वाला है।[11] बार-बार अब्दुल्ला ख़ाँ के आग्रह [illegible] के बाद अंत में अप्रैल के महीने में अजीतसिंह ने अनूपसिंह राठौड़ को गुजरात में [illegible] नायब नियुक्त किया। गुजरात न जाने का कारण यह था कि अजीतसिंह की आँख बीकानेर पर लगी हुई थी। प्रायः उसी समय उसने बीकानेर पर आक्रमण किया, किंतु सफलता [illegible] नहीं कर सका।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि मूल रूप से राजपूत राजा सैयद बंधुओं की राजनीतिक गतिविधियों से अलग ही रहना चाहते थे। उनकी इस नीति का स्वाभाविक परिणाम [illegible] की स्थिति को कमज़ोर करना था।

मराठों के साथ किए गए समझौते को अधिक दृढ़ बनाने के लिए, औपचारिक [illegible] उन्हें दक्षिण की चौथ एवं सरदेशमुखी के लिए शाही फ़रमान प्रदान किया गया। मराठा सैनिक जो राजधानी में ठहरे हुए थे, इस सनद के साथ शाहू के परिवार के व्यक्तियों को [illegible] उसकी माँ सम्मिलित थी और जो शाहू के दरबार से भाग जाने के समय से [illegible] लेकर दिल्ली से चले गए। अब उत्तरी भारत में कोई भी मराठा सैनिक नहीं रहा। किंतु [illegible] में सैयदों के अधिकार को बनाए रखने में मराठों का पूरा सहयोग बना रहा। दक्षिण में हुसैन अली का नायब, आलम अली वास्तव में शंकराजी मल्हार के संरक्षण में कार्य कर रहा [illegible] शंकराजी मल्हार राजाराम का मंत्री रह चुका था। कहा जाता है कि हुसैन अली ने [illegible] नायब को यह आदेश दे रखा था कि वह शंकराजी के परामर्श से कार्य करे। शाहू के [illegible] शंकराजी के अच्छे संबंध थे, अतः सैयदों के शाहू के साथ अच्छे संबंध बने रहे। [illegible] की महत्वाकांक्षा के कारण इस काल में उनके आक्रमण मालवा व गुजरात में [illegible] रहे। एक आधुनिक लेखक का विचार है कि वास्तव में मराठे उन दोनों प्रांतों [illegible] व सरदेशमुखी प्राप्त करना चाहते थे। अतः सैयदों का मराठों के साथ संघर्ष होने की संभावना बनी हुई थी।[12]

सैयदों ने जाटों के साथ भी अच्छे संबंध बनाए रखने का प्रयास किया। चूड़ामन [illegible] को दिल्ली से ग्वालियर तक के शाही मार्ग का संरक्षक नियुक्त किया गया। [illegible] के समय सैयदों का साथ देने के प्रतिफलस्वरूप उसे सम्मानित किया गया।

इन सब नीतियों से स्पष्ट है कि सैयदों का उद्देश्य अपना एकाधिकार स्थापित [illegible] अथवा धार्मिक व जातीय आधार पर किसी गुट का प्रभुत्व स्थापित करना नहीं था [illegible] अमीर वर्ग को अपने पक्ष में लाने के लिए प्रारंभ से ही उन्हें उच्च पद एवं मंसबें [illegible] गईं। इस तरह सैयदों को प्रशासन में उनके सहयोग की अपेक्षा थी। निज़ामुलमुल्क [illegible] छबेलाराम को लिखे गए पत्रों में अब्दुल्ला ख़ाँ ने अपनी नीति को स्पष्ट करते हुए [illegible] है कि "हिंदुस्तान के प्रशासन का कार्य ऐसा महत्वपूर्ण है कि वह प्रमुख अमीरों एवं [illegible] के सहयोग के बिना एक व्यक्ति द्वारा नहीं चलाया जा सकता। वर्तमान परिस्थितियों में [illegible] यह उचित है कि मैं नए व्यक्तियों को नियुक्त करूँ तथा उन पर निर्भर रहूँ, आशा [illegible] है कि तुम्हारे जैसे अनुभवी व्यक्ति, जो मेरे मित्र रह चुके हैं, का सहयोग प्राप्त करूँ [illegible]

सैयदों की आंतरिक समस्याएँ

अपनी नीति को कार्यरूप देने के लिए सैयदों के समक्ष अनेक आंतरिक कठिनाइयाँ भी थीं। फ़र्रुख़सियर को गद्दी से हटाने के कारण अमीरों में सैयदों के प्रति भय एवं संशय की भावना उत्पन्न हो गई थी। मुग़ल बादशाह की इतनी प्रतिष्ठा उस समय भी थी कि बादशाह के विरुद्ध हाथ उठाना एक जघन्य कार्य ही नहीं नमकहरामी का सबूत समझा जाता था। इसके अतिरिक्त मुहम्मद अमीन ख़ाँ एवं निज़ामुलमुल्क की अपनी महत्वाकांक्षा सर्वोच्च अधिकार प्राप्त करने अथवा कोई स्वतंत्र रियासत स्थापित करने की थी। दोनों भाइयों के मध्य राजनीतिक एवं व्यक्तिगत अधिकार के विषय पर बढ़ते हुए मतभेदों ने इन कठिनाइयों को और भी विषम बना दिया।

प्रारंभ में ही शाही ख़ज़ाने के बँटवारे एवं प्रशासनिक अधिकारों के प्रश्न को लेकर दोनों भाइयों में विरोध उत्पन्न हो गया था। फ़र्रुख़सियर को पदच्युत करने के बाद अब्दुल्ला ख़ाँ ने शाही ख़ज़ाने के ऊपर अपना अधिकार जमा लिया था जिससे हुसैन अली रुष्ट हो गया था। इसी तरह आगरा के क़िले पर अधिकार जमाने के समय वहाँ के परंपरागत ख़ज़ाने के बँटवारे के प्रश्न पर दोनों भाइयों में फिर मतभेद हो गया। रतनचंद ने दूसरी अमीरों के द्वारा समझौता कराके दोनों भाइयों में बड़ी कठिनाई से मेल कराया। इलाहाबाद के विरुद्ध भेजी जाने वाली सेना के नेतृत्व के प्रश्न पर भी दोनों भाई एकमत नहीं थे तथा हर एक सेना का नेतृत्व स्वयं करने का इच्छुक था। अंत में विवाद का अंत करने के लिए रतनचंद को सेनापति नियुक्त किया गया था।[14]

वास्तविक रूप से दोनों भाइयों का विरोध प्रशासनिक अधिकार एवं नीति दोनों प्रश्नों पर था। हुसैन अली अब्दुल्ला ख़ाँ की अपेक्षा चुस्त एवं साहसी था। सेनापति होने के कारण उसने वास्तविक अधिकार अपने हाथ में ले लिए थे। किंतु हुसैन अली जल्दबाज़ एवं गर्म स्वभाव का था। ख़ाफ़ी ख़ाँ लिखता है कि "राज्य के मामलों एवं सैनिक कार्य की दृष्टि से वह (हुसैन अली) अपने भाई की अपेक्षा अधिक योग्य था। किंतु वह वास्तविक समस्या के प्रति उदासीन था एवं कूटनीतिक प्रपंचों में दक्ष नहीं था।"[15] पुराने अमीरों के प्रति अब्दुल्ला ख़ाँ की नीति को वह एक कमज़ोरी समझता था और यह चाहता था कि सैयदों के सभी विरोधियों को तत्काल उनके पदों से हटा दिया जाए। फ़र्रुख़सियर को गद्दी से हटाने के बाद अब्दुल्ला ख़ाँ ने निज़ामुलमुल्क को बिहार का सूबेदार नियुक्त किया था। उसके बिहार में रहने से निज़ामुलमुल्क 'कोराजाब' ज़मींदारों के उपद्रव से तथा कम आमदनी होने के कारण आर्थिक कठिनाई में उलझा रहेगा जिससे उसे अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर नहीं मिलेगा। किंतु हुसैन अली के आग्रह से निज़ामुलमुल्क को बिहार के स्थान पर मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया। उसे यह वचन दिया गया कि उसे 'जीवन भर' मालवा में ही रहा जाएगा अथवा किसी भी स्थिति में उसे शीघ्र स्थानांतरित नहीं किया जाएगा। निज़ामुलमुल्क मार्च 1719 को अपने भतीजे मुग़ल ख़ाँ एवं प्रायः एक हज़ार मंसबदारों के साथ मालवा के लिए रवाना हुआ। बाद में मंसबदारों के परिवारों को भी उसने साथ ले लिया।[16]

3rd Paper - History
Q.1. Compulsory questions from the entire ... Unit -I
... Sikh
...eaty of
...ill 1739)

वास्तव में निज़ामुल्मुल्क के साथ संबंधों की समस्या एक व्यक्ति की समस्या न होकर अधिकांश आलमगीरी एवं बहादुरशाही अमीरों के साथ संबंधों की समस्या थी। ईरान व तूरान से आए हुए अमीर, यद्यपि कई पीढ़ियों से भारत में रह चुके थे, फिर भी हिंदुस्तानी मुसलमानों से अपने को उत्कृष्ट समझते थे। राज्य सत्ता का हिंदुस्तानी मुसलमानों अर्थात सैयदों के हाथ में जाना वह अपना व्यक्तिगत अपमान समझते थे। उनके भावों को व्यक्त करते हुए खाफ़ी खाँ लिखता है, ''दोनों सैयद, जो हुकूमत के असली मालिक थे, अपने को शासन ... सैन्यशक्ति दोनों में श्रेष्ठ (साहेबी सैफ़ो क़लम) समझते थे तथा बारहों की तलवार के ... ईरानी व तूरानी मुग़लों को नगण्य गिनते थे।'' इसके अतिरिक्त बहुत से ईरानी व तूरानी अमीर सैयदों का मराठों एवं राजपूतों के साथ सहयोग तथा धार्मिक करों को हटा कर हिंदुओं को अपने पक्ष में करने की नीति से अप्रसन्न थे। साथ ही अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह सैयदों को अपने पद से हटाना आवश्यक समझते थे।[17] तारीख़े-हिंदी का लेखक रुस्तम अली कहता है कि ''बहुत से तूरानी व हिंदी अमीरों के सैयदों का विरोध करने का कारण केवल उनकी ईर्ष्या तथा व्यक्तिगत विद्वेष था।''[18] ऐसी स्थिति में निज़ामुल्मुल्क के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करना यह सब अमीर अपने विरुद्ध कार्यवाही समझते थे। सैयद बंधु इन पुराने अमीरों को उनके पदों से हटाना नहीं चाहते थे क्योंकि ऐसी स्थिति में उन्हें नए अमीरों तथा मराठों, राजपूतों व जाट आदि पर आश्रित हो जाना पड़ता, जिससे नवीन संकट पैदा होने की संभावना थी। किंतु न चाहते हुए भी सैयदों ने ऐसे क़दम उठाए जिससे निज़ामुल्मुल्क का विद्रोह अवश्यंभावी हो गया।

निज़ाम का विद्रोह और सैयदों का पतन

मालवा पहुँचने के पश्चात निज़ामुल्मुल्क ने सैयदों की ओर से संभावित ख़तरों को ध्यान में रखते हुए तेज़ी से सैनिक तैयारी प्रारंभ कर दी। निज़ामुल्मुल्क के इरादों के प्रति सैयद पहले से ही सशंकित थे। सैनिक तैयारी के साथ ही साथ निज़ामुल्मुल्क ने सैयदों के विरुद्ध ... से सहायता माँगी थी तथा क़िलों में अपने विश्वस्त व्यक्ति नियुक्त कर दिए। इस प्रकार उसने मांडू के क़िलेदार मरहमत ख़ाँ को, जिसे हुसैन अली ने निकाल दिया था, पुनः सेवा में ले लिया। निज़ामुल्मुल्क का यह व्यवहार सैयदों का खुला अपमान था। साथ ही यह पुराने नियमों का उल्लंघन था क्योंकि बड़े क़िलों के क़िलेदार की नियुक्ति सदैव स्वयं मुग़ल बादशाह किया करते थे। ऐसा भी प्रतीत होता है कि हुसैन अली दक्षिण के साथ ही मालवा, गुजरात, अजमेर एवं आगरा सूबों पर अपना सीधा नियंत्रण स्थापित करना चाहता था। इसके लिए वह मालवा को अपना प्रधान केंद्र बनाना चाहता था।[19] इसके पीछे दो उद्देश्य दिखाई देते हैं: प्रथम, मराठों के कार्यकलापों पर पूर्ण नियंत्रण रखना तथा द्वितीय, साम्राज्य को दो प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित करना जिससे दोनों भाइयों के मध्य अधिकारों के संघर्ष की समस्या बहुत हद तक हल हो सके। इस योजना को कार्यान्वित करने के पूर्व निज़ामुल्मुल्क को मालवा से हटाना आवश्यक था। हुसैन अली ने निज़ामुल्मुल्क को आगरा, इलाहाबाद, बुरहानपुर ... मुल्तान में से किसी एक की सूबेदारी चुनने को कहा। किंतु निज़ामुल्मुल्क इतनी आसानी से

मालवा छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। उसने अभी मालवा की पहली फ़सल से भी मालगुज़ारी वसूल नहीं की थी। अतः उसने इस आदेश का विरोध किया। उसका कहना था कि सैयदों का यह आदेश उसके साथ किए गए वचन को तोड़ना है।[20]

निज़ामुल्मुल्क के विरोध की आशंका से हुसैन अली ने पहले से ही अपने बख़्शी दिलावर अली ख़ाँ को एक तोपख़ाने और 15000 सवारों की फ़ौज के साथ मालवा की सरहद पर भेज दिया था। निज़ामुल्मुल्क के इस उत्तर के बाद उसने अपने भतीजे आलम अली ख़ाँ को, जो दक्षिण का नायब सूबेदार था, सावधान रहने के लिए लिखा।[21] किंतु निज़ाम ने सैयदों के आक्रमण की प्रतीक्षा नहीं की। वह दरबार में उपस्थित होने का बहाना करके उज्जैन से निकला किंतु उत्तर की ओर कूच न करके उसने नर्मदा नदी पार की और दक्षिण पहुँच गया। दक्षिण पहुँचते ही बरार एवं ख़ानदेश के सूबेदार उससे आ मिले। शीघ्र ही असीरगढ़ के दुर्ग पर बिना तोप दागे ही उसका अधिकार हो गया। वहाँ के अन्य प्रमुख अमीर, जो सैयदों के विश्वासपात्र रह चुके थे, निज़ामुल्मुल्क से आ मिले। सैयदों के प्रति अमीर वर्ग की अप्रसन्नता का मुख्य कारण यही था कि सर्वसाधारण सैयदों को नमकहराम समझने लगे थे। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर निज़ाम ने यह प्रचार प्रारंभ किया कि (1) उसका एकमात्र उद्देश्य शाही वंश की प्रतिष्ठा एवं सम्मान की रक्षा करना है, जिसे सैयद समाप्त करना चाहते हैं[22] (2) सैयद तूरानी एवं ईरानी परिवारों को अपमानित करना, उनका नाश करने का निश्चय कर चुके हैं, उसके विरुद्ध सैयदों की कार्यवाही इसके लिए प्रथम क़दम है (3) सैयदों ने हिंदुओं के साथ समझौता कर लिया है तथा इस्लाम विरोधी नीति अपना ली है।[23]

इसी तरह निज़ामुल्मुल्क ने 'राजवंश ख़तरे में है' तथा जातीयता एवं धर्म की रक्षा का नारा लगाकर अमीरों तथा आम जनता को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया।

इन नवीन घटनाओं के परिणामस्वरूप सैयदों की स्थिति अत्यधिक नाज़ुक एवं संकटमय हो गई। पुराने अमीरों के प्रति नीति के प्रश्न पर दोनों भाइयों में पुनः विरोध पैदा हो गया। हुसैन अली ने यह निष्कर्ष निकाला कि मुग़ल अमीरों, विशेषतः तूरानियों पर अधिक समय तक विश्वास नहीं किया जा सकता। वह इन अमीरों को उनके पद से हटाकर शीघ्र ही उनका नाश कर देना चाहता था। अतः उसने द्वितीय बख़्शी, मुहम्मद अमीन ख़ाँ की हत्या करने का निश्चय किया। दूसरी ओर अब्दुल्ला ख़ाँ ऐसे कार्यों को नीच एवं हानिकारक समझता था। वह अभी भी निज़ामुल्मुल्क को दक्षिण का सूबेदार बनाकर उससे समझौता करने को तैयार था। हुसैन अली इस तरह के व्यवहार को कमज़ोरी समझता था। अंत में निज़ामुल्मुल्क के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने का निर्णय हुआ। दिलावर अली ख़ाँ को उत्तर की ओर से तथा आलम अली को दक्षिण की ओर से निज़ामुल्मुल्क के ऊपर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। उनका विचार था कि इस तरह निज़ामुल्मुल्क दोनों पाटों के बीच पिस जाएगा और नष्ट हो जाएगा। आलम अली की सहायता के लिए हुसैन अली ने शाहू एवं बालाजी विश्वनाथ को भी पत्र लिखे।[24]

निज़ामुल्मुल्क तथा सैयदों के संघर्ष का विस्तारपूर्वक वर्णन यहाँ करना आवश्यक नहीं

Scanned by CamScanner

1. New political Trends: Jat, Satnami...
2. Relation with the Rajputs
3. Deccan policy

है।[21] यह कहना पर्याप्त है कि निज़ाम ने बड़ी सैनिक कुशलता तथा साहस का परिचय दिया। इससे पूर्व कि आलम अली की सेना दक्षिण से उस पर हमला करे, निज़ाम उत्तर की ओर मुड़ा और दिलावर ख़ाँ की सेना पर टूट पड़ा तथा 19 जून 1720 को उसने उसकी सेना को कुचल डाला। तत्पश्चात वह आलम अली एवं पेशवा बाजीराव की सेना का सामना करने को मुड़ा।

बहुत से अवसरवादी अमीर अब आलम अली को छोड़कर निज़ामुलमुल्क से आ मिले। 10 अगस्त 1720 को निज़ामुलमुल्क ने शकरखेड़ा के युद्ध में आलम अली एवं उसके मराठा दल को पूर्णतः परास्त कर दिया। निज़ाम की इन विजयों से सैयदों के समक्ष बड़ा भारी संकट पैदा हो गया। उनके प्रच्छन्न विरोधी अब उनके विरुद्ध षड्यंत्र करने लगे, जिसमें गुप्त रूप से बादशाह मुहम्मद शाह ने भी साथ दिया। हुसैन अली अभी भी निज़ाम के साथ समझौता करने के लिए तैयार नहीं था। अतः यह निश्चय किया गया कि अब्दुल्ला ख़ाँ दिल्ली तथा उत्तर भारत के शासन की देखभाल करे और हुसैन अली बादशाह को साथ लेकर निज़ाम के विरुद्ध अभियान करे। क्योंकि चंबल नदी में पानी चढ़ा हुआ था, हुसैन अली ने अजमेर के मार्ग से दक्षिण जाने का निश्चय किया। उसका मनोरथ यह भी था कि वह राजपूत राजाओं को अपने साथ चलने के लिए बाध्य करे। अतः उसने अजीतसिंह से आग्रह किया कि वह तत्काल जयसिंह के साथ अजमेर पहुँच जाए ताकि मीरबख़्शी को वहाँ उनकी प्रतीक्षा न करनी पड़े।

सैयदों का अपनी शक्ति को इस प्रकार बाँटना उनके लिए घातक सिद्ध हुआ। आगरा के कुछ मंज़िल बाद ही अमीन ख़ाँ, हैदर कुली ख़ाँ, सआदत ख़ाँ एवं मीर जुमला आदि मुगल अमीरों की योजना के अनुसार हुसैन अली की हत्या कर दी गई। हुसैन अली की हत्या की खबर सुनते ही अब्दुल्ला ख़ाँ शीघ्र ही दिल्ली पहुँचा और क़िले से एक नया बादशाह सिंहासन पर बैठाकर सैनिक संघर्ष की तैयारी में लग गया। किंतु अब्दुल्ला ख़ाँ द्वारा एकत्रित सेना बादशाह मुहम्मदशाह की सेना के समक्ष नहीं टिक सकी। 13 नवंबर 1720 को आगरा के पास हसनपुर में अब्दुल्ला ख़ाँ पराजित हुआ और उसे बंदी बना लिया गया। इसके साथ ही सैयद बंधुओं की विज़ारत समाप्त हो गई।

सैयद विज़ारत की समीक्षा

सैयदों की विज़ारत का काल मुगल साम्राज्य के इतिहास में कई अंशों में महत्वपूर्ण था। मुगल साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने में सैयदों ने कई नए प्रयोग किए और प्रारंभिक काल में ऐसा प्रतीत होता था कि उनकी नीतियाँ मुगल साम्राज्य में नया जीवन संचार करने में सफल होंगी। सैयदों की असफलता के कारण केवल व्यक्तिगत नहीं थे। मूल समस्या अमीर वर्ग के चरित्र व संगठन तथा मुगल साम्राज्य के स्वरूप तथा तैमूरी वंश के चरित्र के साथ जुड़ी हुई थी। इस संदर्भ में मराठों, राजपूतों इत्यादि की अपनी नीतियाँ भी सैयदों के लिए महत्वपूर्ण थीं।

मुगल साम्राज्य में अमीर वर्ग के संगठन की रचना इस प्रकार से की गई थी कि किसी

एक देश या जाति के अमीर आसानी से शासनतंत्र पर अपना अधिकार नहीं जमा सकते थे। यद्यपि ईरानी व तूरानी अमीरों की संख्या अन्य अमीरों के अनुपात में अधिक थी, तथापि वह राज्य में अपने विशेषाधिकार बनाए रखना चाहते थे। अतः मराठा, हिंदुस्तानी इत्यादि अन्य अमीरों के प्रभाव का बढ़ना उन्हें अस्वीकार था। औरंगज़ेब जैसे कठोर शासक के सामने खुल्लमखुल्ला कुछ कहना उनके लिए कठिन था। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद वह उन नए अमीरों के पर काट देना चाहते थे। किंतु हुआ ठीक उसके विपरीत। साथ ही, पुराने अमीरों में कुछ खानदानी अमीर, जैसे 'चीन गुट' के अमीरों की अपनी महत्वाकांक्षा थी। यह गुट पुराने अमीरों के अधिकार तथा मुगलों की प्रतिष्ठा के नाम पर सैयदों का विरोध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कर रहा था। ये योग्य एवं महत्वाकांक्षी अमीर राज्य के सर्वोच्च अधिकार अपने हाथों में रखना चाहते थे। सैयदों की मराठा एवं राजपूत को रियासतें देने की नीति भी उन्हें पसंद न थी, न ही वे औरंगज़ेब की धार्मिक नीति त्यागने के पक्ष में थे। इस्लाम एवं राजवंश की प्रतिष्ठा की रक्षा का नारा लगाने के साथ ही साथ निज़ामुलमुल्क ने सैयदों पर मुगल विरोधी होने और राज्य पर अपना एकाधिकार स्थापित करने का आरोप लगाया। ऊपर कहा जा सकता है कि सैयदों ने सभी वर्गों के उच्च अमीरों का, जिनमें आलमगीरी एवं बहादुरशाही अमीर भी थे, तथा मराठा, राजपूत आदि सबका सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया। तथापि सैयदों के विरोधियों को सैयदों की नीति को गलत रूप से प्रस्तुत करने तथा सैयदों के विरुद्ध संघर्ष को मुगल एवं हिंदुस्तानी के बीच संघर्ष का स्वरूप देने का अवसर मिल गया।

राजनीतिक दृष्टि से फ़र्रुख़सियर को पदच्युत करना सैयदों की बहुत बड़ी भूल थी। समसामयिक लेखकों की रचनाओं में सैयदों के आचरण के बारे में यह वाद-विवाद का विषय है कि क्या सैयद नमकहराम थे, अथवा उन्होंने फ़र्रुख़सियर के साथ जो बरताव किया, उसके कार्यों के अनुरूप था। इर्विन का मत है कि फ़र्रुख़सियर को हटाया जाना अवश्यंभावी था किंतु जो कार्य लगभग आवश्यक हो गया था उसे करने के लिए जो तरीका अपनाया गया वह अत्यधिक क्रूर था तथा उसकी निर्मम हत्या करनी आवश्यक नहीं थी।[22] इसके लिए प्रश्न दूसरा है। फ़र्रुख़सियर की हत्या चाहे अनावश्यक क्रूरता से की गई हो, यह कार्यवाही उसे पदच्युत करने का स्वाभाविक परिणाम थी। जब तक फ़र्रुख़सियर जीवित रहता, सैयद अपने को सुरक्षित नहीं समझ सकते थे। वास्तव में प्रश्न यह है-क्या सैयद फ़र्रुख़सियर को गद्दी से हटाए बिना अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते थे? अब्दुल्ला ख़ाँ का विचार था कि यह संभव था। उसका विचार था कि यदि सब महत्वपूर्ण पद उनके हाथों में रहें अथवा उनके मनोनीत व्यक्तियों द्वारा भरे जाएँ, तो ख़ुतबा एवं सिक्का फ़र्रुख़सियर के नाम में रहने से कोई हानि नहीं। फ़र्रुख़सियर को गद्दी से हटाने से, जिसके लिए मूल रूप से हुसैन अली उत्तरदायी था, अनेक अमीर सैयदों से घृणा करने लगे। यही नहीं, उनके समर्थक उनसे विमुख हो गए। अब तक सैयद व्यक्तिगत रूप से बहादुर योद्धा समझे जाते थे, और ऐसा माना जाता था कि वे एक कृतघ्न बादशाह के विरुद्ध अपने जीवन एवं सम्मान के लिए लड़ रहे हैं। अब वे निर्दयी एवं नमकहराम समझे जाने लगे। सभी समकालीन लेखकों ने, जिन्होंने सैयदों

के समर्थक लेखक भी सम्मिलित हैं, फ़र्रुख़सियर को पदच्युत करने को अमानवीय एवं निकृष्ट कार्य बताया है।[7] इसके अतिरिक्त फ़र्रुख़सियर के कारण पुराने अमीर सैयदों का खुला विरोध नहीं कर पाते थे क्योंकि फ़र्रुख़सियर के अपने कृपापात्र उन्हें सैयदों से भी अधिक लगते थे। इस प्रकार फ़र्रुख़सियर सैयदों और इन पुराने अमीरों के बीच एक ढाल का कार्य करता था। फ़र्रुख़सियर को पदच्युत करने के बाद सैयदों को इन पुराने अमीरों के विरोध का सीधा सामना करना पड़ा।

साथ ही सैयदों ने अपनी शक्ति एवं साधनों का ठीक मूल्यांकन नहीं किया। तूरानी व 'चीन गुट' के प्रति अपनी नीतियों के विषय में दोनों भाइयों में मतभेद रहा और शायद इसी कारण पूरी तैयारी किए बिना उन्होंने उनके साथ संघर्ष प्रारंभ कर दिया। हुसैन अली की अपेक्षा अब्दुल्ला ख़ाँ वास्तविक स्थिति को ठीक तरह समझता था। धैर्य एवं कूटनीति के द्वारा वह मुहम्मद अमीन ख़ाँ, निज़ामुल्मुल्क एवं सरबुलंद ख़ाँ को फ़र्रुख़सियर से अलग करने में सफल हो गया था। वह इन अमीरों के साथ अपने संबंधों को और दृढ़ करना चाहता था। किंतु हुसैन अली, जो जल्दबाज़ था, इस नीति को अव्यावहारिक समझता था। उसकी इच्छा थी कि निज़ामुल्मुल्क, मुहम्मद अमीन ख़ाँ आदि को शीघ्र नष्ट कर दिया जाए अथवा उन्हें पंगु बना दिया जाए ताकि उनके विरुद्ध कार्य करने में वे अशक्त हो जाएँ। इन भिन्न दृष्टिकोणों के कारण तथा प्रशासनिक अधिकार आदि के प्रश्न पर मनमुटाव हो जाने के कारण सैयदों की कार्यप्रणालियों में परिपक्वता का अभाव रहा।

प्रशासनिक दृष्टि से सैयदों की योग्यता तथा उनकी विज़ारत के कार्यकलापों की समीक्षा करना सरल नहीं है। फ़र्रुख़सियर के समय से ही आंतरिक कलह के कारण प्रशासन में शिथिलता आ गई थी। स्थान-स्थान पर ज़मींदारों एवं महत्वाकांक्षी व्यक्तियों ने उपद्रव खड़ा कर दिया था। राज्य के पुराने नियम भुला दिए गए थे। रतनचंद जैसे व्यक्तियों पर शासन की बागडोर छोड़ने के कारण बहुत से लोग विमुख हो गए थे। रतनचंद इत्यादि के प्रति उनका मुख्य आक्षेप रिश्वतख़ोरी एवं मालगुज़ारी वसूल करने में कठोर व्यवहार करने का था। यह आक्षेप कहाँ तक ठीक है, कहना कठिन है। दूसरी तरफ़ सैयदों के विरोधी समसामयिक लेखक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि उन्होंने शक्ति एवं व्यवस्था के लिए सतत प्रयत्न किए तथा उनकी सैनिक योग्यता एवं प्रतिष्ठा के कारण ही शासन पूरी तरह जर्जरित नहीं हो पाया।

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि मराठों तथा राजपूतों को रियायतें देने की सैयद नीति कहाँ तक दूरदर्शी थी, क्योंकि मूल रूप से मराठों के हित सैयदों के हितों से भिन्न थे। मराठों ने स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित करने के संकल्प को तिलांजलि नहीं दी थी। सैयदों की मदद से वह दक्षिण तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों में अपने पैर जमाना चाहते थे। अतः सैयदों तथा मराठों की मैत्री दीर्घकालीन होनी कठिन थी। तथापि कुछ समय तक मराठे तथा सैयदों के हित एक थे-दोनों आलमगीर की नीति तथा आलमगीरी अमीरों के प्रभाव को समाप्त कर देना चाहते थे। अपनी नासमझी के कारण सैयदों ने मराठों के सहयोग का पूरा लाभ नहीं उठाया। निज़ाम के विरुद्ध लड़ने के समय बाजीराव ने आलम अली के समक्ष यह प्रस्ताव

रखा था कि वह औरंगाबाद में मोर्चेबंदी कर ले और उत्तर भारत से सैनिक दल आने की प्रतीक्षा करे। मराठे निज़ाम के विरुद्ध गुरिल्ला प्रणाली से युद्ध करके उन्हें परेशान करते रहेंगे। किंतु आलम अली ने इसे कायरता समझी और जल्दबाज़ी करके अपनी जान गँवा दी तथा निज़ाम को अपनी स्थिति मज़बूत करने का अवसर दे दिया।

मुग़ल साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने में मराठों की अपेक्षा राजपूतों का अधिक महत्व निहित था। मुग़ल साम्राज्य के अंतर्गत न केवल राजपूताना में [illegible] राजपूत राजाओं को अपने राज्यों के अतिरिक्त बड़ी मनसबें तथा [illegible] प्राप्त करने का अवसर मिला। यद्यपि सैयदों ने राजपूत राजाओं को बड़ी रियायतें दी तथा उनकी [illegible] को दूर कर दिया था, अपने संकुचित दृष्टिकोण के कारण राजपूत राजाओं ने सैयदों को अपेक्षित सैनिक सहायता नहीं दी, और अपनी स्थानीय समस्याओं में उलझे रहे।

इस प्रकार सैयदों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या यह थी कि मुग़ल [illegible] को एवं मराठों तथा राजपूतों को सैयदों की बुनियादी नीतियों के साथ [illegible] नहीं था। पुराने अमीर भी राज्य के हितों का ध्यान न करके अपने [illegible] के प्रति अधिक जागरूक थे।

उक्त कारणों से सैयदों की विज़ारत स्थायी नहीं हो सकी। [illegible] महत्वहीन नहीं कही जा सकती। सैयदों ने रूढ़िवादी एवं संकुचित नीतियों [illegible] राष्ट्रीय राज्य की ओर प्रगति करने का मार्ग दिखाया। उन्होंने [illegible] अयोग्य बादशाह के शासनकाल में शक्ति का केंद्र केवल वज़ीर बन सकता है।

संदर्भ

1. ख़ाफ़ी ख़ाँ 816, 818, 831, 842; कामवर 410, 413; [illegible] : तारीख़-ए-शहादत-ए-फ़र्रुख़सियर व जुलूसे मुहम्मदशाही, 151.
2. देखिए, पार्टीज़ ऐंड पॉलिटिक्स 144.
3. ख़ाफ़ी ख़ाँ 732; कामवर 430.
4. अजायबुल आफ़ाक़; देखिए सतीश चन्द्र : टू हिस्टॉरिकल [illegible] (प्रोसीडिंग्स आफ़ दि इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस 1960) i, 226.
5. शिवदास 68; ख़ाफ़ी ख़ाँ 846; बालमुकुन्दनामा ([illegible] सतीश चन्द्र, [illegible]) [illegible] 19, 4.
6. कामवर 442 : ख़ाफ़ी ख़ाँ 816. रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, 315 ([illegible] का पत्र): मिरात, ii, 23.
7. ख़ाफ़ी ख़ाँ 833; देखिए, पार्टीज़ ऐंड पॉलिटिक्स 145.
8. विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए, सतीश चन्द्र : टू हिस्टॉरिकल [illegible] सवाई जयसिंह (प्रो॰ ऑफ़ इ॰ हि॰ कां॰, 1960) i, 226.
9. अजीत विलास 101. इसके पूर्व जोधपुर लौटते समय अजीतसिंह ने [illegible] यहाँ शादी की. अजीत विलास में अजीतसिंह की लड़की का नाम इंदरकुँवर [illegible] लिखा है (ओझा : मारवाड़ राज्य का इतिहास 588).